पाँच शत्रु

काम गया ध्यान आया।
क्रोध गया विवेक आया।
लोभ गया ईमान आया।
मोह गया विराम आया।
अभिमान गया भगवान् आया।।

मानव के 5 शत्रु होते हैं– काम, क्रोध, मोह, लोभ एवं अहंकार। इन पाँचों शत्रुओं को कैसे नियंत्रण में रखना चाहिये तभी मानव सुखमय, शांतमय एवं आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है। इन का संक्षिप्त विवरण अग्रलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है–

मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा।।2।।
अति कठिन करहिं वर जोरा। मानहिं नहिं विनय निहोरा।।3।।
तम, मोह, लोभ अहँकारा। मद, क्रोध, वोध-रिपु मारा।।4।।
अति करहिं उपद्रव नाथा। मरदहिं मोहि जाति अनाथा।।5।।

–विनयपत्रिका पद नं. 125

हे प्रभो! मेरा हृदय तुम्हारा निवास-स्थान है परन्तु आजकल उसमें बहुत से चोर आकर बस गये हैं। तुम्हारे मन्दिर में चोरों ने घर कर लिया है। मैं उन्हें बाहर निकालना चाहता हूँ परन्तु वे लोग बड़े ही कठोर हृदय के हैं। इसलिये वे सदा जबरदस्ती ही करते रहते हैं। मेरी विनती-निहोरा कुछ भी नहीं मानते। इन चोरों में सात मुख्य हैं - 1. अज्ञान, 2. मोह, 3. लोभ, 4. अहंकार, 5. मद, 6. क्रोध, 7. काम। हे प्रभु! ये सब बड़ा ही उपद्रव कर रहे हैं, मुझे अनाथ जानकर कुचल डालते हैं। इसी प्रकार कबीरदास जी ने लिखा है–

काम, क्रोध, मद, लोभ की जब लगि घर में खान।

कहा मूरख, कहा पंडिता दोनों एक समान ।।

जब तक व्यक्ति के हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि निवास करते हैं तब तक उसकी कोई भी उन्नति नहीं हो सकती । अर्थात् मूर्ख और पंडित में कोई अंतर नहीं रहता । परन्तु जब व्यक्ति इन पर अपना नियंत्रण कर लेता है । तभी वह बुद्धिमान कहलाता है अन्यथा नहीं ।

1. काम : काम मानव जीवन का परमावश्यक अंग है । अतः इसका जीवन में होना स्वाभाविक है क्योंकि सृष्टि-सृजन इसके द्वारा ही होता है । इसलिए इसका प्रयोग संतानोत्पत्ति के लिए ही करना चाहिए न कि काम वासना की पूर्ति के लिए जैसे की प्रायः आधुनिक युवकों व युवतियों द्वारा इसका दुष्प्रयोग किया जाता है । ऐसा करने से मानव की आयु एवं शक्ति का ह्रास होता है । यहाँ तक कि जब कोई व्यक्ति कुदृष्टि से किसी सुन्दरी को देखता है तो भी आयु घटती है । अतः आदित्य ब्रह्मचारी चाणक्य ठीक ही लिखते हैं –

नास्ति, कामसमो व्याधिर्, नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति क्रोधसमो वाह्निर्, नास्ति ज्ञानात् परं सुखम् ।। 5.14

काम के समान दूसरा कोई रोग नहीं, मोह के समान कोई दूसरा शत्रु नहीं, क्रोध के समान कोई आग नहीं और ज्ञान के समान कोई परमसुख नहीं । काम से 10 व्यसन उत्पन्न होते हैं–

1. मद्यपान, 2. गाना, 3. स्त्रियों का अतिसंग, 4. जुआ खेलना, 5. शिकार खेलना, 6. दिन में सोना, 7. व्यर्थ इधर-उधर घूमना, 8. दूसरों की निन्दा करना, 9. बजाना, 10. नाचना, नाच करना एवं देखना । इनमें फंसने का अर्थ हुआ धन एवं धर्म से रहित होना ।

2. क्रोध : क्रोध के संयुक्त परिवार का संक्षिप्त विवरण अग्रलिखित है–

(1) क्रोध की माता – उपेक्षा ।

(2) क्रोध का पिता – भय ।

(3) क्रोध की लाडली बहन – जिद्द । यह सदा क्रोध के पीछे रहती है और आमतौर पर दिखाई नहीं देती है, परन्तु कभी-कभी आवाज़ सुनकर बाहर भी आ जाती है ।

(4) क्रोध का बड़ा भाई – अहंकार ।

(5) क्रोध की पत्नी – हिंसा ।

(6) क्रोध का बेटा – बैर ।

(7) क्रोध की दो बेटियाँ– निन्दा और चुगली । एक कान के पास रहती है और दूसरी मुँह के पास ।

(8) क्रोध की पुत्रवधू – ईर्ष्या ।

(9) क्रोध की पोती – घृणा ।

जो व्यक्ति जाने अनजाने इस संयुक्त परिवार के जाल में फंस जायेगा, उसका क्या हाल होगा । इस विषय में पाठकगण स्वयं अनुमान लगा सकते हैं ।

क्रोध में मानव का मस्तिष्क संतुलन बिगड़ जाता है । क्रोध में मानव को यह भी ध्यान नहीं रहता कि मेरे सामने कौन खड़ा है, कौन नहीं ?क्या उचित है और क्या अनुचित ?कई बार तो मनुष्य क्रोध में आपे से बाहर होकर ऐसी बातें कह जाता है जो उसके स्वयं के विरुद्ध होती हैं । इस कारण क्रोध को मानव का प्रबल शत्रु कहा गया है । यहाँ तक कि क्रोध के कारण रक्त काला हो जाता है । इसलिए क्रोधी को संतानोत्पति का कोई भी अधिकार नहीं क्योंकि क्रोधी के वीर्य से जो संतान होगी वह भी दूषित होगी । अतः योगिराज श्री कृष्ण ने ''गीता'' में सत्य ही कहा है–

क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति भ्रंशात्त बुद्धि नाशः बुद्धि नाशात् प्रणश्यति । ।

—गीता 2.63

क्रोध से अत्यंत मूढ़ भाव उत्पन्न होता है, मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम होने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से व्यक्ति का नाश हो जाता है । क्रोध से निम्नलिखित 8 व्यसन उत्पन्न होते हैं—

1. ईर्ष्या करना, 2. कठोर वचन बोलना, 3. द्रोह करना, 4. चुगली करना, 5. किसी स्त्री से बलात्कार करना, 6. बिना अपराध कठोर दण्ड देना, 7. कुकर्मों में धन व्यय करना, 8. दोषों में गुण एवं गुणों में दोषारोपण करना ।

3. लोभ : आजकल कुछ व्यक्ति सम्पति दूनी करने के चक्कर के कारण ठगे जाते हैं और दूनी होने के स्थान पर घर भी गवाँ बैठते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से शीघ्र ही परमात्मा-प्राप्ति करने के चक्कर में पड़कर न स्वयं भ्रष्ट होते हैं अपितु घर की बहू बेटियों को भी भ्रष्ट करा देते हैं । ऐसे व्यक्ति अध्यात्म के लोभी होते हैं । लालच बुरी बला है और लोभ संसार के सब पापों का मूल है । क्योंकि लोभ कभी पूरा नहीं हो सकता क्योंकि वह अनन्त होता है । अतः लोभी न होकर सदा संतोषी होना चाहिये । इसी कारण इसको पाप का बाप कहा जाता है । इसके विषय में चाणक्य ने बहुत ही सुन्दर लिखा है —

लोभ-मूलानि पापानि, रसमूलाश्च व्याधयः ।
स्नेह-मूलानि दुःखानि, त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भवेत् । । —8.228

पापों का मूल लोभ है, रोगों का मूल स्वाद है, दुखों का मूल ममता

है– इन तीनों का त्याग करके ही व्यक्ति सुखी हो सकता है ।

4. मोह : तुलसीदास जी लिखते हैं–

तुलसी जग में यूं रहो, ज्यूं रसना मुख माहिं ।
खाती घी और तेल नित, फिर भी चिकनी नाहिं । ।

वस्तुतः मोह की व्युत्पत्ति रक्त के संबंध एवं वातावरण से होती है । इसी कारण कोई व्यक्ति परिवार के मोह में फँस जाता है और कोई व्यक्ति धन के मोह में फँस जाता है । यहाँ तक कि मोह इतना प्रबल होता है कि घर में पुत्र-पौत्रों के द्वारा अपमानित जीवन व्यतीत करना तो लोग स्वीकार करते हैं परन्तु गृह त्यागी होकर वनप्रस्थी होना नहीं । परन्तु जब व्यक्ति का जीवन दीप बुझ जाता है, तब भी संसार के सारे कार्य चलते रहते हैं । परिवार के लोग उसके साथ ही तो नहीं मर जाते । क्योंकि यहाँ पर कोई किसी का नहीं है । घर की नारी तो क्या तन की नाड़ी भी अपनी नहीं है । अतः जितना अधिक मोह उतना अधिक बंधन और उतनी अधिक मन की अशांति । मोह में व्यक्ति के दोष भी दिखाई नहीं देते हैं जैसे एक कवि के शब्दों में–

मोह में हम बुराइयाँ नहीं देख पाते ।
और घृणा में हम अच्छाइयाँ नहीं देख पाते । ।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि मोह दलदल है । जिस व्यक्ति या वस्तु के साथ मैं और मेरा जुड़ जाता है वहीं मोह हो जाता है । ज्ञानियों में भी मोह मेहमान बनकर आता है परन्तु साधारण व्यक्ति के जीवन में मोह परिवार के सदस्य की भाँति आता है । मोह होने से धीरे-धीरे आसक्ति हा जाती है क्योंकि आसक्ति का अर्थ अत्यधिक मोह । अतः मोह ज्ञान का विरोधी है क्योंकि यह मानव को अंधा बना देता है जहाँ पर अज्ञान होता है वहीं पर मोह होता है । इसके विषय में एक शिक्षाप्रद

कहानी इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है–

आसक्ति स्वभाव को बांध लेती है जब मनुष्य शरीर और अहंकार के बंधन से परे उठता है तभी वह सुख और दुःख के द्वंद्वसे भी पार हो जाता है। जैसे एक संत किसी गाँव से गुजर रहे थे। लोग उनके पास आते और अपनी समस्याओं का समाधान पाते। वे ग्रामीणों को प्रवचन भी दिया करते थे। ऐसे ही एक दिन किसी ने संत से पूछा कि यह कैसे हो सकता है कि जब लोग प्रभु ईसा को सूली पर तरह-तरह के कष्ट दे रहे थे तो वे अपने दुःख का अनुभव न कर उन आततायियों के कल्याण की प्रार्थना करते रहे। जब मंसूर के हाथ-पांव काट दिए गए, तब उन्होंने सारे कष्टों को हँसते-हँसते सहा। इस पर तो सहसा विश्वास नहीं होता।

संत ने उस व्यक्ति की बात ध्यान से सुनी और उसे एक कच्चा नारियल देते हुए कहा–जाओ इसे फोड़ कर इसकी साबुत गिरी तोड़ लाओ। वह गया और उसने नारियल तोड़ा लेकिन वह गिरी साबुत न निकाल सका। वह नारियल लेकर संत के पास वापस पहुँचा और बोला कि नारियल की साबुत गिरी निकल ही नहीं सकती। संत ने उसे एक पक्का नारियल दिया और उसे फोड़कर देखने के लिए कहा। वह व्यक्ति गया और जैसे ही उसने नारियल फोड़ा उसमें से साबुत गिरी अपने आप बाहर निकल आई। वह आदमी दौड़ता हुआ संत के पास जाकर बोला कि साबुत गिरी तो बाहर निकल आई। संत ने कहा–यही तुम्हारी शंका का समाधान है।

सामान्य आदमी कच्चे नारियल की तरह होता है। आसक्ति के कारण उसमें शरीर के प्रति अपनत्व का भाव रहता है। इस भाव के कारण वह शरीर के सुख व दुःख को अनुभव करता है। ईसा और मंसूर जैसी हस्तियां सूखे नारियल की तरह होती है जिनमें आसक्ति का रस नहीं बचा रहता। इस कारण शरीर को कष्ट देने पर भी उन्हें पीड़ा नहीं

सताती । अपने आपमें मस्त रहकर वे सबके कल्याण की बात ही सोचते हैं । आसक्ति के रहते आदमी परिपक्व नहीं हो पाता । जब वह शरीर और अहंकार के बंधन से परे हो जाता है तभी सुख और दुःख के द्वंद्वसे भी पार हो पाता है । इसके विषय में तुलसीदास ने लिखा है-

ममता तू न गई मेरे मन ते ।
पाके केस जन्म के साथ ज्योति गई नयनन ते ।
टूट दसन वचन नहिं आवत सोभा गई मुखन ते ।
श्रवन वचन न सुनत काहु के बल गये सब इन्द्रिण ते ।
तन थाके कर काँपन लागे लाज गई लोकन से ।
कफ पित वात कंठ पर बैठियो सुतहिं बुलावत करते ।
भाई बंधु यह परम प्यारे नारि निकारत घर ते ।
जैसे शशि मंडल विच स्याही छूट न कोटि जतन ते ।
तुलसीदास बलि जाऊँ सदा तिमि लोभ पराये धन ते ।
ममता तू गई न मेरे मन ते ।

हे ममता ! तू मेरे मन से नहीं गई, जन्म के साथी केश पक गए, आँखों से ज्योति चली गई, दाँत टूट गये, मुख से बोला नहीं जाता, झुर्रियाँ आ गई हैं, कानों से सुना नहीं जाता, असहाय हालत हो गई है, लड़कों को इशारे से बुलाते हैं, परिवार के बंधु-बांधव, स्त्री आदि परम प्रिय लोग हैं घर से निकालकर बाहर कर देते हैं । ऐसी दशा में भी जैसे-चन्द्रमा में दिखने वाली कालिमा किसी भी प्रयत्न से दूर नहीं की जा सकती, ठीक इसी प्रकार से पराये धन के प्रति लोभ भी बना हुआ है । वह दूर नहीं हो रहा है ।

5. अहंकार : अहंकार बुरी बला है । अहंकारी व्यक्ति का कोई भी सम्मान नहीं करता । जैसे फुटबाल में अहंकार की हवा भरी होती है इसी कारण वह सबसे ठोकर खाती है । परन्तु जब हवा निकल जाती है, तब

उसे ठोकर नहीं पड़ती । इसी कारण अहंकारी व्यक्ति भी हर जगह ठोकर ही खाता है । अहंकार अग्रलिखित 8 प्रकार का होता है—1. मैं ठीक हूँ, 2. आप ग़लत हैं, 3. मैं संग्रह करूँ, 4 आप संग्रह न करें, 5. में आप पर शासन करूँ, 6. आप मुझ पर शासन न करें, 7. मैं न्यायसंगत हूँ, 8. आप न्याय संगत नहीं है । अतः अहंकार के मुख्य कारण हैं—वंश, शारीरिक बल, सौंदर्य एवं यौवन, सत्ता, स्वजन, धन, ज्ञान आदि परन्तु ये सब क्षणभंगुर एवं नाशवान् है । अभिमान रोग है और विनम्रता इसकी औषधि है । यदि विनम्रता को अपनाते तो उसमें अभिमान रूपी दानव नहीं रहता । इसके विषय में एक शिक्षाप्रद दृष्टांत इस प्रकार है—

एक व्यक्ति ने एक बकरी और एक मैना पाल रखी थी । प्रतिदिन प्रातःकाल जब मैना गाती थी तो वह अत्याधिक प्रसन्न हो जाता था, परन्तु बकरी जब मैं-मैं करती तो उसे अच्छा नहीं लगता था । उसने एक दिन महात्मा कबीर से पूछा—''महात्मा जी । मैना गाती है तो उसका स्वर इतना मीठा क्यों लगता है । इसके विपरीत बकरी की मैं-मैं सुनकर सभी नाक भौं सिकोड़ लेते हैं । महात्मा कबीर ने उत्तर दिया—मैना का स्वर इसलिये मीठा लगता है क्योंकि ''मैं ना'', ''मैं ना'' अर्थात् ''मैं नहीं'' कहती रहती है । इसके विपरीत बकरी का स्वर इसलिये मीठा नहीं लगता, क्योंकि वह ''मैं-मैं'', ''मैं-मैं'' करती रहती है । जिसका अर्थ होता है कि अभिमान और अभिमानी सदा ही बुरा प्रतीत होता है । कबीर ने सत्य ही कहा—

जब मैं था तब तू नहीं, अब तू है मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ।।

जब मेरे हृदय में अहंकार था तब मेरे हृदय में प्रभु नहीं थे । अब मेरे हृदय में प्रभु निवास करते हैं । अतः अहंकार नष्ट हो गया । सत्य ही कहा गया है कि प्रेम रूपी गली अत्यंत संकीर्ण है जिसमें दो नहीं समा सकते । अर्थात् प्रेम के आगे अहंकार शून्य हो जाता है । अतः व्यक्ति

को कभी भी इनका अहंकार नहीं करना चाहिये। वस्तुतः एक विद्वान् वही होता है जिसमें विनम्रता होती है। अभिमान देवों का नहीं राक्षसों का गुण है। व्यक्ति में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार होता है। जानवर में काम, क्रोध, लोभ, मोह तो होता है परन्तु अहंकार नहीं। यह अध्यात्म का ही शत्रु है। जैसे एक कवि के शब्दों में–

लघुता से प्रभुत्ता मिले, प्रभुत्ता से प्रभू दूर।
चींटी ले शक्कर चली, हाथी के शिर धूर।।

इसलिए किसी हिन्दी कवि ने सत्य ही कहा है–

जिस घर में अंधकार होता है, वहाँ मेहमान कहाँ से आये?
जिस मन में अभिमान होता है, वहाँ भगवान् कहाँ से आये?

क्योंकि जहाँ अभिमान होता है, वहाँ भगवान् नहीं होते। जहाँ अहंकार होता है वहाँ करतार नहीं होते। जहाँ ग़रूर होता है वहाँ हुज़ूर नहीं होते। जहाँ अहंकार होता है वहाँ ओंकार नहीं होता।

अभिमान के विषय में सुकरात के जीवन की एक शिक्षाप्रद घटना इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है–

सुकरात को एक धनवान् व्यक्ति मिलने आया। वह एथेन्स का बड़ा धनपति था। उसे अपने धन का बड़ा अभिमान था। अकड़ स्वाभाविक थी। चाल भी अलग। शान भी अलग... लोग देखते तो दंग रह जाते..... अहंकार से आकंठ भरा हुआ, सुकरात ने सोचा इसे सन्मार्ग दिखाना चाहिए। कहा, बैठो.... सुकरात घर में अंदर गया... एक कमरे से दुनियाँ का नक्शा ले आया। उस धनवान् से कहा, यह दुनियाँ का नक्शा है, जरा देखो, इस नक्शे में यूनान कहाँ है?

उस व्यक्ति ने नक्शा ध्यान से देखा... एक जगह नज़र टिक गई... कहा, यह यूनान है। छोटा-सा। धनवान् कुछ असमंजस में पड़ा। सोचा, मैं तो सुकरात से कुछ और ही बात करने आया था और यह मेरे सामने

दुनियाँ का नक्शा रख रहा है । सुकरात ने फिर कहा, यूनान में एथेन्स कहाँ है ?

धनवान् ने फिर नक्शे पर नज़र डाली... एक छोटे से बिंदु पर उंगली टिका दी । कहा, यह है एन्थेस... लेकिन आपका यह सब पूछने से क्या अभिप्राय है ?

सुकरात ने कहा, थोड़ा इंतजार करो, अभी बताता हूँ । अब यह बताओ कि इस एथेन्स में तुम्हारा महल कहाँ है ? धनवान् बता नहीं सका । अब वह सुकरात का अभिप्राय समझ गया । सुकरात ने कहा, तुम्हें अपने धन पर अभिमान है न । बताओ, इतनी बड़ी दुनियाँ में तुम कहाँ हो ? है कहीं तुम्हारा स्थान ? फिर अकड़ किस बात की ? धनवान् की आँखे खुली... वाकई मैं तो इस दुनियाँ में, यूनान में और अपने ही शहर एथेन्स में कहीं भी नहीं हूँ ।

याद रखें... दुनियाँ का और इस पृथ्वी का नक्शा ही सब कुछ नहीं है... और यह पृथ्वी ही अकेली पृथ्वी नहीं है... इस ब्रह्मांड में... जिस पर हम रह रहे हैं... अभी तक जो जानकारी मिल सकी है वैज्ञानिकों को, उसके अनुसार लगभग चार अरब सूर्य हैं और इन सभी सूर्यों की अपनी-अपनी पृथ्वियाँ हैं । ये चार अरब सूर्य भी वे हैं जो अब तक वैज्ञानिक जान सके हैं..... और कितने हैं सूर्य..... और कितनी हैं पृथ्वियाँ..... यह मनुष्य के ज्ञान से बाहर हैं..... और वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इन सभी पृथ्वियों में से कम से कम 50,000 पृथ्वियों में हमारे जैसा जीवन होना चाहिए । अनन्त आकार..... अनन्त पृथ्वियाँ..... अनेक ही सूर्य..... फिर कहाँ खड़े हैं हम ? कहाँ खड़ी है पृथ्वी ? कहाँ खड़ा है इन्सान ? इसकी धन-दौलत ? महल, कोठियां ? ऐशो-आराम ? किस की क्या औक़ात है... इस विशाल ब्रह्मांड में ?इस छोटे से नगर में ? इस छोटे से कस्बे में ? दुनियाँ के नक्शे में यह शहर... यह कस्बा, यह गाँव कहाँ है ? कुछ पता नहीं चलता... फिर अकड़ किस

बात की ? इन्सान तो चलता फिरता मुर्दा है, मुट्ठी भर राख । बस...

एक बात याद रखें... जिसके मन में भगवान् के प्रति प्यार है, जो हर समय भगवान् को अपने आसपास समझता है, वह कभी असफल नहीं होता । जीवन की लड़ाई लम्बी हो सकती है, संघर्ष लम्बा हो सकता है, लेकिन यह नहीं हो सकता कि जो प्रभुशरण में जाए और प्रभु को अपनी ओढ़नी बना कर संघर्ष पर निकले, वह असफल हो जाए । प्रभु कभी भी अपने भक्त को असफल नहीं होने देते ।

लाओत्से बहुत अच्छी बात कहते हैं... मैं धार्मिक हूँ, इसलिए कोई मुझे हरा नहीं सकता... क्योंकि मैं जीतना ही नहीं चाहता । यह धार्मिक व्यक्ति की पहचान है । धार्मिक व्यक्ति हमेशा जीत की ही स्थिति में रहता है, क्योंकि उसे अपने प्रभु पर विश्वास होता है, इसलिए वह उस स्थान पर बैठता है, जहाँ जूते होते हैं, जूतों के पास बैठने वाले को अहंकार नहीं होता और जहाँ अहंकार नहीं होता, वहाँ तो प्रभु स्वयं विराजते हैं ।

धार्मिक व्यक्ति कभी असंतुष्ट भी नहीं हो सकता... उसमें अपने प्रभु में आस्था होती है । यही धर्म का सूत्र है..... पांडव इसलिए जीते थे, क्योंकि उनके साथ धर्म था, धार्मिक व्यक्ति कभी हार ही नहीं सकता... यह धर्म का सूत्र है... धर्म की जीत बड़ी आनंदित करती है । धार्मिक को हराया ही नहीं जा सकता..... वह असफल हो ही नहीं सकता । क्योंकि धार्मिक संतुष्ट रहता है ..... हारता हमेशा असंतुष्ट ही है, हारता बुरा व्यक्ति है, इसलिए वह जीत नहीं सकता...

अहंकार छाया की भाँति होता है न इसको छोड़ा जा सकता है, न इसको पकड़ा जा सकता है । इसलिए नथा सिंह ''निर्दोष'' ने लिखा है–

तू अगर खुद को खो ही नहीं सकता ।
उसका दीदार तुझको हो नहीं सकता । ।

अतः एक हिन्दी कवि के शब्दों में

परिवार बढ़ा तो सत्संग छूटा, व्यवहार बढ़ा तो प्रभु छूटा ।
अक़्ल बढ़ी तो परधन लूटा, मान बढ़ा तो अपना रूठा ।
और बल बढ़ा तो निर्बल कूटा ।।

वस्तुतः बड़ा वह होता है जोकि बड़े कार्य करे । बड़ा धनवान्, बड़ा बलवान् और बड़ा पदाधिकारी बड़ा किस बात का यदि वह निकृष्ट कार्य करता है । अब प्रश्न उठता है कि इन पाँचों शत्रुओं को कैसे नियंत्रित किया जाये । वस्तुतः अभिमान रूपी राक्षस को नियंत्रण करने के मुख्य उपय अग्रलिखित हैं–

1. विनम्रता – अभिमान रूपी रोग की दवा है विनम्रता । जब भी आपके मन में अभिमान रूपी रोग का आविर्भाव हो तो उसे विनम्रता रूपी औषधि के द्वारा नियंत्रित कीजिए ।

2. ऊँची स्थिति वालों को देखना – जब व्यक्ति अपने से ऊँची स्थिति वालों को देखता है तभी उसके अभिमान में कमी आती है । वह सोचने लगता है कि वह तो संसार में एक कण के समान है ।

3. उसके समान अन्य व्यक्तियों का होना – जब व्यक्ति यह सोचता है कि उसके समान संसार में अनेक व्यक्ति है, तभी उसके अभिमान में कमी आ जाती है ।

4. नश्वर वस्तुएं – जब व्यक्ति यह सोचता है कि सब भौतिक पदार्थ – शरीर, धन, सत्ता आदि नाश्वान् हैं । इन सबको एक दिन सबने छोड़कर जाना है तभी उसके अभिमान में कमी आती है । उस समय वह समझने लगता है कि सारा संसार एक धर्मशाला है और हम सब यात्री है । अतः वे सब भोग्य पदार्थों का त्याग भाव से प्रयोग करने लगता है । उसके जीवन में आसक्ति की कमी हो जाती है । वह अपना जीवन सुखमय, शांतमय एवं आनंदमय व्यतीत करने लगता है । मैं

आपको इस विषय में एक दृष्टांत प्रस्तुत करता हूँ।

एक ऋषि के पास एक युवक ज्ञान के लिए पहुँचा। ज्ञानप्राप्ति के बाद शिष्य ने गुरु दक्षिणा में गुरु को कुछ देना चाहा। गुरु ने दक्षिणा के रूप में वह चीज़ मांगी जो बिल्कुल व्यर्थ हो। शिष्य व्यर्थ चीज की खोज में निकल पड़ा।

उसने मिट्टी की ओर हाथ बढ़ाया तो मिट्टी बोल पड़ी कि तुम मुझे व्यर्थ समझ रहे हो? क्या तुम्हें पता नहीं है कि इस दुनियाँ का सारा वैभव मेरे ही गर्भ में प्रकट होता है? वे विविध वनस्पतियाँ, ये रूप, रस और गंध सब कहाँ से आते हैं? शिष्य आगे बढ़ गया। थोड़ी दूरी पर उसे एक पत्थर मिला। शिष्य ने सोचा इसे ही ले चलूं। जैसे ही उसे लेने के लिए हाथ बढ़ाया, तो पत्थर से आवाज़ आई—तुम इतने ज्ञानी होकर भी मुझे बेकार क्यों मान रहे हो? तुम अपने भवन और अट्टलिकाएं किससे बनाते हो?

तुम्हारे मंदिर में किसे गढ़ कर देव प्रतिमाएं स्थापित की जाती हैं? मेरे इतने उपयोग के बाद भी तुम मुझे व्यर्थ मान रहे हो? यह सुनकर शिष्य ने फिर अपना हाथ खींच लिया। वह सोचने लगा जब मिट्टी और पत्थर इतने उपयोगी हैं तो आखिर व्यर्थ क्या हो सकता है। उसके मन से आवाज़ आई कि सृष्टि का हर पदार्थ अपने आप में उपयोगी है तो ऐसा क्या हे जो मैं गुरु जी को दक्षिणाँ दे सकूं।

रास्ते में उसे एक संत मिले। युवक ने उन्हें अपनी बात बताई। संत मुस्कुराए और युवक से कहा—ऐसा नहीं है कि व्यर्थ चीजें सिर्फ वे होती हैं जिनका सीधे तौर पर आपके जीवन में कोई कार्य नहीं होता बल्कि व्यर्थ की चीजें वे हैं जिनसे किसी का कोई भला नहीं हो सकता।

वस्तुतः व्यर्थ और तुच्छ वह है, जो दूसरों को व्यर्थ और तुच्छ समझता है। व्यक्ति के भीतर का अहंकार ही एक ऐसा तत्त्व है जिसका कहीं कोई उपयोग नहीं। यह सुनकर शिष्य सीधा गुरु जी के पास गया और उनके पैरों

में गिर पड़ा । वह दक्षिणा में अपना अहंकार देने आया था ।

निष्कषर्तः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी वस्तु का कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिए । जैसे एक उर्दूशायर ने लिखा है–

छोड़ा है जब से अहम्, कुछ-कुछ नज़र आने लगा है ।
अब तो हर शख़्स में तू नज़र आने लगा है ।
तेरी बंदगी में इस कदर खो गया हूँ ।
ज़र्रे-ज़र्रे में तू नज़र आने लगा है ।
अहम् आदमी को ख़ुदा से तोड़ता है ।
जहाँ में कोई रिश्ता नहीं जिसे यह जोड़ता है ।
न जाने लोग उम्र भर क्यों इसको पालते हैं ।
यह तो दिलों को दिलों से तोड़ता है । ।
तू खुदी को छोड़ दे तू ख़ुदा हो जायेगा ।
तेरे जीने और मरने का हक अदा हो जायेगा ।
मस्त रहना सीख ले जो ख़ुदा के नाम में ।
जो न उतरेगा कभी ऐसा नशा हो जाएगा ।
अपने मन को साफ रखना जो भी मानव सीखले ।
देखते ही देखते वो क्या से क्या हो जायेगा ।
अगर तू ख़ुद को भूलकर ख़ुदा का हो जायेगा ।
देखते ही देखते तू देवता हो जायेगा । ।
तेरा शेवा गर किसी के काम आस के ।
तेरे जीने का हक अदा हो जायेगा । ।

अतः इन पाँचों शत्रुओं को अधोलिखित उपायों के करने से नियंत्रण में रखा जा सकता है ।

1. कामना – सारे विकारों का आविर्भाव कामना से होता है । काम और कामना में ना का अंतर है । काम का स्थान कामना को देना चाहिए । कामना का अर्थ है इच्छा । इच्छा के बिना तो थाल का भोजन मुँह तक भी नहीं पहुँच सकता । पहले भोजन की इच्छा होगी तभी खाया जायेगा । यहाँ तक कि इसके बिना तो मोक्ष भी प्राप्त नहीं होता । अतः सांसारिक कार्यों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी इच्छा करनी चाहिए । जैसे विवाह द्वारा गृहस्थ में पदार्पण करना धर्म है, पाप नहीं है । विवाह के लिए सुन्दर देवी की खोज भी पाप नहीं है । परन्तु पाप है पर नारी पर कुदृष्टि । इसके विषय में किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर लिखा है–

वरो नारी सुन्दर, सयानी सुशिक्षित ।
तको पर न वनिता, प्यारी किसी की । ।

2. मन्यु : क्रोध का स्थान मन्यु को देना चाहिए । क्योंकि यह मोह उत्पन्न करके मानव का पतन कर देता है । क्योंकि क्रोध मन्यु प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति है । इसे आध्यात्मिक क्रोध अथवा उचित क्रोध भी कहा जाता है । जिन व्यक्तियों एवं जातियों में मन्यु नहीं होता, वे पददलित हो जाती है । अतः विष का उगलना क्रोध है, किन्तु समयानुसार बलपूर्वक भावों की अभिव्यक्ति मन्यु है । मन्युहीन व्यक्ति आत्महीन होता है और मन्युयुक्त मोक्षमार्गी होता है ।

3. प्रयत्न एवं पुरुषार्थ : लोभ का स्थान प्रयत्न एवं पुरुषार्थ को देना चाहिए । लोभ न केवल मानव को विकृत करने में आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में भी आत्महीनता का पोषक होने के कारण हानिकारक है अपितु यह पथभ्रष्ट करने वाला भी है । किसी भी व्यक्ति का पेट तो भर सकता है परन्तु लोभ रूपी पेटी कभी नहीं भर सकती । इस कारण लोभी कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता । परन्तु इसके विपरीत प्रत्यन व

पुरुषार्थ इस लोक व परलोक के साधक हैं। अतः मानव जीवन में सफलता के लिए प्रयत्न के साथ-साथ पुरुषार्थ करना ही परमावश्यक है। व्यक्ति को प्रयत्न एवं पुरुषार्थ के पश्चात् जो भी मिले उसमें संतोष रखना चाहिये। कहना चाहिये प्राप्त ही पर्याप्त है क्योंकि संताषी सदा सुखी और लोभी सदा दुःखी। इससे संतोष आता है जो कि संसार का सर्वोत्तम धन है।

4. स्नेह : मोह का स्थान स्नेह को देना है। क्योंकि मोह बंधन का कारण है और स्नेह सद्भावना, कर्त्तव्य एवं बुद्धि का। मोह के कारण कर्मबंधन होते हैं फलतः मानव आवागमन के चक्र में फंस जाता है। परन्तु स्नेह से सद्भावना की उत्पत्ति होकर सात्विकवृत्ति का प्रादुर्भाव होता है।

5. आत्मगौरव : घमंड का स्थान आत्मगौरव को देना चाहिए। अहंकार से वृति तामसी एवं राक्षसी बनती है परन्तु आत्मगौरव से पाप मुक्त सात्विक एवं दैवी। इससे विनम्रता आती है।

अतः ऊपरलिखित विवेचन-विश्लेषण से यह निष्कर्ष एवं निचोड़ निकलता है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार मानव के शत्रु हैं और इनका इलाज संसार के किसी भी डॉक्टर के पास नहीं है। परन्तु यदि आप इन्हें अपनी बुद्धि एवं प्रभुभक्ति से नियंत्रित कर लेते हैं तो ये आपके मित्र बन जायेंगे। इसके पश्चात् आपका जीन सफल एवं सार्थक हो जायेगा। ऐसा तभी होगा यदि आप पर भगवत्कृपा होगी। विश्व कवि तुलसीदास जी ने भी अपनी अमर कृति ''रामचरितमानस'' में सत्य ही लिखा है–

क्रोध, मनोज (काम), लोभ, मद (अहंकार),
माया छुटहिंसकल राम की दाया (कृपा)।

सो नर इन्दु जाल नहिं भूला,
जापर होई नट अनुकूला ।।

जैसे तरुणसागर जी महाराज लिखते हैं–

संतोष जीवन का सब से बड़ा धन है । जिसके पास संतोष है उसके पास सब कुछ है और जिसके पास संतोष का धन नहीं उसके पास करोड़ों रुपये होते हुए भी कुछ नहीं है । धन-दौलत मनुष्य को सुविधाएं तो दे सकती हैं परन्तु सुख नहीं । सुखी तो वह है जो संतोषी है । तभी तो कहते हैं कि संतोषी सदा सुखी । संतोष धन के सामने सारे धन फीके हैं । लोभ का कोई अंत नहीं और जो संतोषी है उससे बड़ा कोई संत नहीं ।

बड़े प्रवचन–भाग 9 (पृष्ठ 97)

जैसे एक उर्दू शायर ने लिखा है–

आदमी कितना अंधेरे में खोया है ।
हथेली पर मुक़द्दर तलाश रहा है ।।
प्यास बुझती है पानी की दो चार बूंदों से ।
हवस इतनी है समुंदर तलाश करता है ।।

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618
www.dpkapoorbooks.co.in

दिनांक : 10-10-2020